0861CH08

अध्याय 6

हाशियाकरण से निपटना

पिछले अध्याय में हमने दो अलग-अलग समूहों और असमानता व भेदभाव के उनके अनुभवों के बारे में पढ़ा था। ये समूह भले ही कम ताकतवर हों लेकिन उन्होंने अलग-थलग कर दिए जाने या औरों के वर्चस्व का विरोध किया है, अपनी आवाज़ उठाई है और संघर्ष करते रहे हैं। उन्होंने अपने लंबे इतिहास में विविध रणनीतियों के सहारे हालात को बदलने का प्रयास किया है। धार्मिक सांत्वना, सशस्त्र संघर्ष, आत्मपरिष्कार व शिक्षा और आर्थिक बेहतरी – अपनी स्थिति में सुधार के लिए उन्होंने तरह-तरह के रास्ते अपनाए हैं। संघर्ष का कौन सा रास्ता चुना जाएगा- यह हरेक मामले में उन हालात पर निर्भर करता है जिसमें हाशियाई समुदाय रहते हैं।

इस अध्याय में हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि विभिन्न समूहों और व्यक्तियों ने असमानता से निपटने के लिए क्या-क्या तरीके अपनाए हैं। आज़ादी के बाद भी इस तरह के संघर्ष और दलीलें जारी हैं हालाँकि उनका स्वरूप बदल गया है। आज हमारे देश के आदिवासी, दलित, मुसलमान, औरतें एवं अन्य हाशियाई समूह यह दलील दे रहे हैं कि एक लोकतांत्रिक देश का नागरिक होने के नाते उन्हें भी बराबर के अधिकार मिलने चाहिए और उनके अधिकारों की रक्षा होनी चाहिए। उनमें से बहुत सारे लोगों ने अपनी चिंताओं को दूर करने के लिए संविधान का भी सहारा लिया है। इस अध्याय में हम देखेंगे कि हाशियाई समूह अपने संघर्षों के दौरान संविधान का सहारा किस तरह लेते हैं। हम यह भी देखेंगे कि विभिन्न समूहों को निरंतर शोषण से बचाने के लिए अधिकारों को कानूनों की शक्ल कैसे दी जाती है। यहाँ इस बात पर भी विचार करेंगे कि इन समूहों को विकास का लाभ प्रदान करने के लिए सरकार की ओर से किस तरह के नीतिगत प्रयास किए गए हैं।

© NCERT not to be republished

मौलिक अधिकारों का उपयोग

जैसा कि आप इस पुस्तक के पहले अध्याय में पढ़ चुके हैं, संविधान में ऐसे कई सिद्धांत सूत्रबद्ध किए गए हैं जो हमारे समाज और राज्य व्यवस्था को लोकतांत्रिक बनाते हैं। इन सिद्धांतों को मौलिक अधिकारों के ज़रिए परिभाषित किया गया है। यह हमारे संविधान का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। ये अधिकार सभी भारतीयों को समान रूप से उपलब्ध होते हैं। जहाँ तक हाशियाई तबकों की बात है, उन्होंने इन अधिकारों को दो तरह इस्तेमाल किया है। पहला, अपने मौलिक अधिकारों पर ज़ोर देकर उन्होंने सरकार को अपने साथ हुए अन्याय पर ध्यान देने के लिए मजबूर किया है। दूसरा, उन्होंने इस बात के लिए दवाब डाला है कि सरकार इन कानूनों को लागू करे। कई बार हाशियाई तबकों के संघर्ष की वज़ह से ही सरकार को मौलिक अधिकारों की भावना के अनुरूप नए कानून बनाने पड़े हैं।

संविधान के अनुच्छेद 17 के अनुसार अस्पृश्यता या छुआछूत का उन्मूलन किया जा चुका है। इसका मतलब यह है कि अब कोई भी व्यक्ति दलितों को पढ़ने, मंदिरों में जाने और सार्वजनिक सुविधाओं का इस्तेमाल करने से नहीं रोक सकता। इसका मतलब यह भी है कि छुआछूत गलत है और लोकतांत्रिक सरकार इस तरह के आचरण को बर्दाश्त नहीं करेगी। लिहाज़ा अब अस्पृश्यता एक दंडनीय अपराध है।

संविधान में ऐसे दूसरे भी अनुच्छेद हैं जो अस्पृश्यता के खिलाफ़ हैं। उदाहरण के लिए, संविधान के अनुच्छेद 15 में कहा गया है कि भारत के किसी भी नागरिक के साथ धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा (इसके बारे में आप कक्षा 7 में समानता पर केंद्रित अध्याय में काफ़ी कुछ पढ़ चुके हैं)। समानता के अधिकार का हनन होने पर दलित इस प्रावधान का सहारा लेते हैं।

इस तरह यदि दलितों को लगता है कि कोई व्यक्ति या समुदाय या

© NCERT not to be republished

Rationalised 2023-24

यह कविता महाराष्ट्र की विख्यात भक्त कवयित्री सोयराबाई द्वारा लिखी गई है। वह चौदहवीं शताब्दी के जाने-माने भक्त कवि चोखामेला की पत्नी थीं। सोयराबाई महार जाति की थीं। उस समय यह जाति अछूत मानी जाती थी।

काया है दूषित
कहना है उनका
और केवल आत्मा है बेदाग

लेकिन दूषित काया
पैदा होती है काया के भीतर ही

है अनुष्ठान वह कौन-सा
होती है जिससे शुद्ध काया?

ऐसा कोई जीव नहीं
पैदा हुआ जो न
खून-सनी कोख से
यही है उस ईश्वर की महिमा

इसलिए दूषण है भीतर
दूषित है काया भीतर से
इसमें कोई भ्रम न रखना
महारी चोखा का है यह कहना।

स्रोत- उमा चक्रवर्ती, *जेंडरिंग कास्ट : थ्रू ए फेमिनिस्ट लेंस*, स्त्री, 2003, पृष्ठ 99.

इस कविता में सोयराबाई शुद्धता की सोच पर उँगली उठाते हुए दलील दे रही हैं कि प्रत्येक मनुष्य एक ही ढंग से पैदा होता है। इसलिए ऐसी कोई चीज़ नहीं होती जो एक की देह को ज़्यादा और दूसरे की देह को कम शुद्ध बना सकती हो। संभवत: वे यह भी कहना चाहती है कि जाति व्यवस्था में लोगों को विभिन्न स्थानों, कार्यों, ज्ञान और प्रतिष्ठा से वंचित रखने या लोगों को एक-दूसरे से अलग रखने वाला छुआछूत का भाव काम के स्वरूप से पैदा नहीं होता। बल्कि यह हमारे 'भीतर से' – हमारे अपने विचारों, हमारी अपनी मूल्य-मान्यताओं से पैदा होता है।

सरकार उनके साथ सही बर्ताव नहीं कर रही है, तो वे मौलिक अधिकारों का सहारा ले सकते हैं। उन्होंने बार-बार भारत सरकार का ध्यान संविधान की ओर आकर्षित कराया भी है और इस बात पर ज़ोर दिया है कि सरकार संविधान का पालन करे और उन्हें न्याय प्रदान करे।

इसी तरह मुसलमानों तथा अन्य अल्पसंख्यक समुदायों ने भी संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों का सहारा लिया है। उन्होंने धर्म और सांस्कृतिक व शैक्षणिक अधिकारों की स्वतंत्रता के अधिकार पर ज़ोर दिया है। जहाँ तक सांस्कृतिक और शैक्षणिक अधिकारों का प्रश्न है, मुसलमान और पारसी आदि सांस्कृतिक-धार्मिक समूहों को अपनी संस्कृति की सुरक्षा का अधिकार मिला हुआ है। इस तरह विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक अधिकारों की व्यवस्था करके संविधान ने ऐसे समूहों को सांस्कृतिक न्याय देने का प्रयास किया है। इसका उद्देश्य यह है कि इन समूहों की संस्कृति पर न तो बहुसंख्यक समुदाय की संस्कृति का वर्चस्व हो और न ही वह नष्ट हो।

हाशियाई तबकों के लिए कानून

जैसा कि आपने पहले पढ़ा था, सरकार अपने नागरिकों की रक्षा के लिए कानून बनाती है। लेकिन सरकार केवल इसी तरह कार्रवाई नहीं करती। हमारे देश में हाशियाई तबकों के लिए खास कानून और नीतियाँ बनाई गई हैं। बहुत सी नीतियाँ या योजनाएँ किसी समिति की सिफ़ारिशों या सर्वेक्षण आदि के नतीजों पर आधारित होती हैं। सरकार इस तरह की नीतियों को प्रोत्साहन देती है ताकि खास तबकों को सही अवसर उपलब्ध कराए जा सकें।

सामाजिक न्याय को प्रोत्साहन

संविधान को लागू करने के लिए राज्य और केंद्र सरकारें जनजातीय आबादी वाले या भारी दलित आबादी वाले इलाकों में विशेष प्रकार की योजनाएँ लागू करती हैं। उदाहरण के लिए, कई स्थानों पर दलितों और आदिवासियों को सरकार की ओर से मुफ्त या रियायती दरों पर छात्रावास की सुविधा उपलब्ध कराई गई है ताकि वे शिक्षा संबंधी सुविधाएँ हासिल कर सकें जो मुमकिन है कि उनके अपने इलाकों में उपलब्ध नहीं हों।

कुछ ज़रूरी सुविधाएँ मुहैया कराने के अलावा सरकार कानूनों का भी इस्तेमाल करती है ताकि व्यवस्था में निहित असमानता को खत्म करने के

© NCERT not to be republished

लिए ठोस कदम उठाए जा सकें। आरक्षण की व्यवस्था इसी तरह का एक महत्त्वपूर्ण कानून/नीति है। यह महत्त्वपूर्ण होने के साथ बेहद विवादास्पद भी है। शिक्षा संस्थानों और सरकारी नौकरियों में दलितों व आदिवासियों के लिए सीटों के आरक्षण का कानून एक महत्त्वपूर्ण तर्क पर आधारित है। इसके पीछे समझ यह है कि हमारे जैसे समाज में जहाँ कुछ तबकों को सदियों तक पढ़ने-लिखने और नयी निपुणताएँ हासिल करने के अवसरों से वंचित रखा गया है, वहाँ लोकतांत्रिक सरकार को इन तबकों की सहायता के लिए ठोस कदम उठाने चाहिए।

आरक्षण की नीति किस तरह काम करती है? देश भर की सभी राज्य सरकारों के पास अनुसूचित जातियों (या दलितों), अनुसूचित जनजातियों और पिछड़ी व अतिपिछड़ी जातियों की अपनी-अपनी सूचियाँ हैं। इसी तरह की एक सूची केंद्र सरकार के पास भी होती है। जो विद्यार्थी शैक्षणिक संस्थानों में दाखिले के लिए या जो उम्मीदवार सरकारी नौकरियों के लिए आवेदन देते हैं, उन्हें जाति और जनजाति प्रमाणपत्र के रूप में अपनी जाति या जनजाति का सबूत देना होता है। अगर कोई खास दलित जाति या जनजाति सरकारी सूची में है तो उस जाति या जनजाति का उम्मीदवार आरक्षण का लाभ उठा सकता है।

कॉलेजों, खासतौर से मेडिकल कॉलेज जैसे पेशेवर संस्थानों में दाखिले के लिए सरकार ने 'कट-ऑफ़' या न्यूनतम अंक सीमा तय की हुई है। इसका मतलब यह है कि इन संस्थानों में सभी दलित और आदिवासी उम्मीदवार दाखिला नहीं पा सकते। इनमें उन्हीं दलित और आदिवासी विद्यार्थियों को दाखिला मिल सकता है जिन्होंने परीक्षाओं में अच्छा प्रदर्शन किया है और न्यूनतम अंक सीमा से ज़्यादा अंक प्राप्त किए हैं। सरकार इन विद्यार्थियों को विशेष छात्रवृत्ति भी देती है। नवीं कक्षा की राजनीति विज्ञान की पुस्तक में आप अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण की व्यवस्था के बारे में और विस्तार से जानेंगे।

आपकी राय में दलितों और आदिवासियों को सामाजिक न्याय प्रदान करने के लिए आरक्षण इतना महत्त्वपूर्ण क्यों है। इसका एक कारण बताइए।

योजनाओं की सूची	यह योजना किस बारे में है?	आपकी राय में इससे सामाजिक न्याय को कैसे बढ़ावा मिलेगा?
विद्यार्थियों के लिए वजीफ़े की व्यवस्था		
विशेष थानों का गठन		
सरकारी स्कूलों में लड़कियों के लिए विशेष योजनाएँ		

Rationalised 2023-24

भाषा की अपनी पुस्तक में आपने कबीर के दोहे पढ़े होंगे। कबीर पंद्रहवीं सदी के कवि थे। पेशे से बुनकर कबीर भक्ति परंपरा से जुड़े थे। कबीर की कविता परमसत्ता के प्रति उनके प्रेम पर केंद्रित थी। उनका यह प्रेम रस्मों और पंडे-पुजारियों के चंगुल से आज़ाद था। उनकी कविताओं में ताकतवर लोगों की तीखी आलोचना दिखाई देती है। कबीर ने ऐसे लोगों पर बार-बार प्रहार किया जो अपनी धार्मिक और जातीय पहचानों के लिए लोगों को साँचे में कैद कर देते हैं। उनकी राय में हर व्यक्ति के पास आध्यात्मिक मुक्ति प्राप्त करने की क्षमता होती है और वे अपने अनुभवों के ज़रिए भीतर के गहरे ज्ञान को हासिल कर सकते हैं। उनके पद सभी मनुष्यों की समानता और श्रम की महत्ता के शक्तिशाली विचारों को सामने लाते हैं। वे एक साधारण कुम्हार, बुनकर और घड़े में पानी लाती औरत, सबके श्रम का सम्मान करते हैं। उनके पदों में श्रम ही समूचे ब्रह्मांड को समझने का आधार है। उनकी प्रत्यक्ष, साहस भरी चुनौती आज भी लोगों को प्रेरित करती है। उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, मध्य प्रदेश, बंगाल, बिहार और गुजरात में दलित, हाशियाई समूह और सामाजिक ऊँच-नीच से घृणा करने वाले लोग आज भी कबीर के पदों को गाते हैं।

दलितों और आदिवासियों के अधिकारों की रक्षा

हाशियाई समुदायों को भेदभाव और शोषण से बचाने के लिए नीतियों के अलावा हमारे देश में कई कानून भी बनाए गए हैं। आइए यहाँ एक सच्ची घटना पर आधारित इस केस स्टडी को पढ़कर जानें कि अपनी रक्षा के लिए दलित इन कानूनों का किस तरह इस्तेमाल करते हैं।

जकमालगुर गाँव के लोग एक बड़े त्योहार की तैयारी में जुटे हैं। यहाँ हर पाँच साल में एक बार स्थानीय देवता की पूजा की जाती है। पाँच दिन चलने वाले इस उत्सव में आस-पास के 20 गाँवों के पुजारी इकट्ठा होते हैं। इस कार्यक्रम की शुरुआत में दलित समुदाय का एक व्यक्ति सारे पुजारियों के पैर धोता है और धोवन के इस पानी से नहाता है। जकमालगुर में यह काम रत्नम के परिवार के लोग करते हैं। रत्नम से पहले उसके पिता और दादा यह काम करते रहे हैं। उन्हें कभी मंदिर में दाखिल नहीं होने दिया गया, लेकिन इस रस्म को उनके लिए एक भारी सम्मान के रूप में देखा जाता था। इस बार रत्नम की बारी थी। रत्नम 20 साल का था और पास के ही एक कॉलेज में इंजीनिरिंग की पढ़ाई कर रहा था। उसने यह रस्म निभाने से इनकार कर दिया।

उसने कहा कि वह इस संस्कार में विश्वास नहीं करता और उसके पुरखों को दलित होने के कारण ऐसा करने के लिए मजबूर किया जाता था। रत्नम के इनकार से न केवल गाँव की ताकतवर जातियाँ, बल्कि उसके अपने समुदाय के कई परिवार भी खफ़ा थे। ऊँची जातियों के लोगों को यह देखकर हैरानी थी कि कच्ची उम्र का एक नौजवान उनका हुक्म मानने से इनकार कर रहा है। उनको लगता था कि रत्नम की पढ़ाई-लिखाई ने उसे बिगाड़ दिया है और अब वह खुद को उनके बराबर मानने लगा है।

रत्नम की जाति के लोग भी ऊँची जाति वालों के गुस्से की आशंका से डरे हुए थे। उनमें से बहुत सारे सवर्णों के खेत-खलिहानों में दिहाड़ी मज़दूर थे। अगर प्रभुत्वशाली जातियाँ उन्हें काम देना बंद कर दें तो वे क्या खाएँगे? ज़िंदगी कैसे चलेगी? ऊँची जातियों ने यह भी ऐलान कर दिया था कि अगर दलित नहीं झुकेंगे तो उन्हें स्थानीय देवता का अभिशाप लगेगा। रत्नम की दलील यह थी कि चूँकि आज तक एक भी दलित मंदिर के भीतर नहीं गया है, इसलिए देवता के उन पर गुस्सा होने का सवाल ही नहीं उठता।

Rationalised 2023-24

ताकतवर जातियों ने रत्नम को सबक सिखाने की ठानी। उन्होंने उसके समुदाय को हुक्म दिया कि वे रत्नम और उसके परिवार का बहिष्कार कर दें। सभी को यह आदेश दिया गया कि कोई भी उसके परिवार से किसी तरह का संपर्क नहीं रखे। एक रात को अचानक कुछ लोगों ने आकर रत्नम की झोंपड़ी में आग लगा दी। रत्नम किसी तरह अपनी माँ के साथ ज़िंदा भाग निकला। उसने अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के तहत स्थानीय थाने में मामला दर्ज कराया। बाकी दलित परिवार तब भी उसके समर्थन में आगे नहीं आए। वे डरे हुए थे। उन्हें लगा कि अगर वे अपना मुँह खोलेंगे तो उनकी हालत भी रत्नम जैसी ही बना दी जाएगी। स्थानीय मीडिया ने इस घटना पर काफ़ी ध्यान दिया। बहुत सारे पत्रकारों ने गाँव का दौरा किया। रत्नम को उन्होंने दलित प्रतिरोध के प्रतीक के रूप में पेश किया। अंततः विवादास्पद रस्म तो खत्म कर दी गई, लेकिन उसके परिवार को गाँव छोड़कर जाना पड़ा क्योंकि गाँव की ऊँची जातियों ने उसका बहिष्कार कर दिया।

क्या आपको ऐसा लगता है कि रत्नम को परंपरागत रस्म निभाने के लिए जिस तरह मजबूर किया जा रहा था, वह उसके मौलिक अधिकारों का हनन था?

आपको ऐसा क्यों लगता है कि दलित परिवार शक्तिशाली जातियों के गुस्से की आशंका से डरे हुए थे?

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989

रत्नम ने अपने गाँव में ऊँची जातियों द्वारा किए जा रहे भेदभाव और हिंसा का विरोध करने के लिए अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के तहत शिकायत दर्ज कराई और कानून का सहारा लिया।

यह कानून 1989 में दलितों तथा अन्य समुदायों की माँगों के जवाब में बनाया गया था। उस समय सरकार पर इस बात के लिए भारी दबाव पड़ रहा था कि वह दलितों और आदिवासियों के साथ रोज़मर्रा होने वाले दुर्व्यवहार और अपमान पर रोक लगाने के लिए ठोस कार्रवाई करे। यों तो इस तरह का व्यवहार लंबे समय से चला आ रहा था, लेकिन सत्तर के दशक के आखिर और अस्सी के दशक में यह समस्या हिंसक रूप लेने लगी थी। इस दौरान दक्षिण भारत के कई हिस्सों में अपने हकों का दावा करने वाले बहुत सारे आग्रही दलित संगठन सामने आए और उन्होंने अपने हकों के लिए पुरज़ोर आवाज़ उठाई वे तथाकथित जातीय दायित्वों का निर्वाह करने को तैयार नहीं थे और समानता का अधिकार चाहते थे। रत्नम की तरह उन्होंने भी दलितों का अपमान व शोषण करने वाली परंपराओं को मानने से इनकार कर दिया था। इसकी वज़ह से ऊँची जातियों के लोग उनके साथ खुले आम हिंसा पर उतारू हो गए थे। सरकार को इस बात का अहसास कराने के लिए दलित संगठनों ने व्यापक अभियान चलाए कि छुआछूत अभी भी जारी है। उन्होंने इस बात के लिए दबाव बनाया कि नए कानूनों में दलितों के साथ होने वाली विभिन्न प्रकार की हिंसा की सूची बनाई जाए और इस तरह के अपराध करने वालों के लिए सख्त सज़ा का प्रावधान किया जाए।

Rationalised 2023-24

© NCERT not to be republished

पंडित देखहु मन में जानी।
कहु धौं छूति कहाँ से उपजी, तबहिं छूति तुम मानी।।
...
एकहि पाट सकल बैठाए, छूति लेत धौं काकी।
छूतिहि जेवन छूतिहि अँचवन, छूतिहि जग उपजाया।
कहैं कबीर ते छूति विवरजित, जाके संग न माया।

संदर्भ- इस पद में कबीर ने बताया है कि प्राणी की तीन स्थितियाँ होती हैं- जन्म, जीवन और मरण। तीनों स्थितियों में सभी प्राणी एक समान रहते हैं और तीनों के मूल में गंदगी है। फिर छुआछूत का भेद-भाव कैसा?

व्याख्या- कबीर कहते हैं कि हे पंडित! मन में भली प्रकार से विचार करके देखो। भला बताओ कि छूत क्या है और कहाँ से उत्पन्न हो गई? तुमने बिना सोचे-समझे छूत नामक एक भावना बना ली है। ...

प्रभु ने एक ही पृथ्वी रूपी पीढ़े पर सभी को समान रूप से बिठा दिया है। फिर तुम किसको छूत कहोगे और किसे अछूत? अन्न और जल जिसका भोजन और पान किया जाता है, गंदगी से संयुक्त है... इसी छूत से सभी उत्पन्न हैं, फिर उनसे कौन बचा है? अत: छुआछूत का भेदभाव निरर्थक है। कबीर कहते हैं कि वास्तव में छूत से वही लोग परे हैं, जिन पर माया का प्रभाव नहीं है।

स्रोत- (सं.)जयदेव सिंह एवं वासुदेव सिंह, *सबद* (कबीर वाङ्मय : खंड 2), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1998, पृष्ठ 207-208.

कबीर अछूत शब्द को यहाँ एक नया अर्थ देते हैं। उनका दावा है कि अस्पृश्यता ही ज्ञान का सर्वोच्च स्तर है- इसका मतलब है कि वह व्यक्ति संकुचित और विभाजक विचारों से पूरी तरह मुक्त है। लिहाज़ा कबीर अस्पृश्यता की सोच को सिर के बल खड़ा करके 'अछूतों' को सबसे निचली अवस्था की बजाय सबसे ऊँची अवस्था में स्थापित कर देते हैं।

इसी प्रकार 1970 और 1980 के दशकों में आदिवासियों ने भी खुद को बड़े पैमाने पर संगठित किया। उन्होंने न केवल बराबरी के लिए आवाज़ उठाई, बल्कि अपनी ज़मीन व संसाधनों को हासिल करने के लिए भी आंदोलन चलाए। इन आदिवासियों को भी ताकतवर सामाजिक गुटों का गुस्सा झेलना पड़ा और उनके साथ भी जमकर हिंसा हुई।

यही वज़ह है कि इस कानून में अपराधों की एक बहुत लंबी सूची दी गई है। इनमें से कई अपराध तो इतने भयानक हैं कि उनके बारे में सोच कर ही दिल दहल जाता है। इस कानून में न केवल भयानक अपराधों का उल्लेख किया गया है, बल्कि यह कानून इस बात की ओर इशारा भी करता है कि साधारण इंसान भी कितने जघन्य कृत्य कर सकते हैं। इस प्रकार इस तरह के कानून हमारे सोचने और काम करने के तरीके को प्रभावित करते हैं और दोषियों को सज़ा भी देते हैं।

इस कानून में कई स्तर के अपराधों के बीच फ़र्क किया गया है। पहला, इसमें शारीरिक रूप से खौफ़नाक और नैतिक रूप से निंदनीय अपमान के स्वरूपों की सूची दी गई है। इसका मकसद ऐसे लोगों को सज़ा दिलाना है जो (i) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी व्यक्ति को कोई अखाद्य अथवा गंदा पदार्थ पीने या खाने के लिए विवश करते हैं; (iii) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी व्यक्ति को नंगा करते हैं या उसे नंगा घुमाते हैं या उसके चेहरे अथवा देह पर रंग लगाते हैं या कोई और ऐसा कृत्य करते हैं जो मानवीय प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं है....।

दूसरा, इसमें ऐसे कृत्यों की सूची भी है जिनके ज़रिए दलितों और आदिवासियों को उनके साधारण संसाधनों से वंचित किया जाता है या उनसे गुलामों की तरह काम करवाया जाता है। फलस्वरूप इस कानून में प्रावधान किया गया है कि अगर कोई भी व्यक्ति (iv) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी व्यक्ति के नाम पर आबंटित की गई या उसके स्वामित्व वाली ज़मीन पर कब्ज़ा करता है या खेती करता है या उसे अपने नाम पर स्थानांतरित करवा लेता है तो उसे सज़ा दी जाएगी।

एक और स्तर पर यह कानून इस बात को मान्यता देता है कि दलित एवं आदिवासी महिलाओं के खिलाफ़ होने वाले अपराध एक खास तरह के अपराध हैं, इसलिए ऐसे लोगों को दंडित करने की व्यवस्था की गई है जो (xi) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की किसी महिला को अपमानित करने के लिए उस पर हमला करते हैं या उसके साथ ज़ोर-ज़बरदस्ती करते हैं....।

क्या आप 1989 के कानून के दो प्रावधानों का उल्लेख कर सकते हैं?

शब्द संकलन को देखें और अपने शब्दों में लिखें कि 'नैतिक रूप से निदंनीय' पद का आप क्या मतलब समझते हैं?

Rationalised 2023-24

हाथ से मैला उठाने का कलंक

बहुत सारे लोग झाड़ू, टिन और टोकरियों के सहारे पशुओं/इंसानों के मल-मूत्र को ठिकाने लगाते हैं। वे बिना पानी वाले (सूखे) शौचालयों से गंदगी उठाकर दूर के स्थानों पर फेंककर आते हैं। हाथ से मैला उठाने वाले पीढ़ी दर पीढ़ी यही काम करते हैं। यह काम आमतौर दलित औरतों और लड़कियों के हिस्से में आता है। आंध्र प्रदेश में सक्रिय सफ़ाई कर्मचारी आंदोलन के अनुसार पूरे देश में दलित समुदाय के लगभग एक लाख लोग यह काम कर रहे हैं। सिर पर मैला ढोने वालों के बीच काम करने वाले इस संगठन का कहना है कि ये लोग 26 लाख निजी और सामुदायिक सूखे शौचालयों की सफ़ाई करते हैं।

सिर पर मैला ढोने वाले बेहद अमानवीय स्थितियों में काम करते हैं। इस काम के कारण उनके स्वास्थ्य को गंभीर खतरा बना रहता है। वे लगातार ऐसे संक्रमण के खतरे में रहते हैं जिससे उनकी आँखों, त्वचा, श्वसन तंत्र और पाचन तंत्र पर असर पड़ सकता है। इस काम के लिए उन्हें बहुत मामूली वेतन मिलता है। नगरपालिकाओं में काम करने वालों को रोज़ाना ₹200 मिलते हैं जबकि निजी घरों में काम करने वालों को इससे भी कम पैसा मिलता है।

जैसा कि आपने इस पुस्तक में पढ़ा है, भारतीय संविधान में अस्पृश्यता की प्रथा को खत्म किया जा चुका है। फिर भी हाथ से मैला उठाने वालों को कई जगह अछूत माना जाता है। गुजरात के भंगी, आंध्र प्रदेश के पाखी और तमिलनाडु के सिक्कलयार इसी श्रेणी में आते हैं। आमतौर पर उन्हें गाँव के किनारे अलग टोलों में रहना पड़ता है। उन्हें मंदिर, सार्वजनिक जल सुविधाओं आदि के पास फटकने भी नहीं दिया जाता है।

1993 में सरकार ने एम्प्लॉयमेंट ऑफ़ मैन्युअल स्केवेंजर्स एंड कंस्ट्रक्शन ऑफ़ ड्राई लैट्रीन्स (प्रॉहिबिशन) एक्ट, 1993 पारित किया था। यह कानून सिर पर मैला उठाने वालों को काम पर रखने और सूखे शौचालयों के निर्माण पर पाबंदी लगाता है। 2003 में सफ़ाई कर्मचारी आंदोलन तथा 13 अन्य संगठनों व व्यक्तियों (जिनमें 7 मैला ढोने वाले थे) ने सर्वोच्च न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर की थी। याचिका दायर करने वालों का कहना था कि सिर पर मैला ढोने की प्रथा न केवल आज भी चल रही है, बल्कि रेलवे जैसे सरकारी उपक्रमों में भी बड़े पैमाने पर प्रचलित है। याचिकाकर्ताओं ने अपने मौलिक अधिकारों को लागू करवाने का आग्रह किया। इसके जवाब में न्यायालय ने निष्कर्ष दिया कि 1993 में पारित किए गए कानून के बाद देश भर में सिर पर मैला ढोने वालों की संख्या में इजाफा हुआ है। न्यायालय ने केंद्र व राज्य सरकार के प्रत्येक विभाग/मंत्रालय को आदेश दिया कि वे 6 माह के भीतर इस बात की सच्चाई का पता लगाएँ। अगर सिर पर मैला ढोने की प्रथा अभी भी प्रचलन में पाई जाती है तो संबंधित सरकारी विभागों को ऐसे लोगों की मुक्ति और पुनर्वास के लिए एक समयबद्ध कार्यक्रम तैयार करना चाहिए। हाथ से मैला उठाने वाले कर्मियों के नियोजन का प्रतिषेध और उनका पुनर्वास अधिनियम 6 दिसंबर 2013 से लागू हुआ है।

हाथ से मैला उठाती एक सफ़ाई मज़दूर

सफ़ाई कर्मचारी आंदोलन के कार्यकर्ता एक सूखे शौचालय को गिरा रहे हैं।

सिर पर मैला उठाने का आप क्या अर्थ समझते हैं?

पृष्ठ 14 पर दिए गए मौलिक अधिकारों की सूची को दोबारा पढ़ें और ऐसे दो अधिकारों का उल्लेख करें जिनका इस प्रथा के ज़रिए उल्लंघन हो रहा है।

सफ़ाई कर्मचारी आंदोलन ने 2003 में जनहित याचिका क्यों दायर की? अपनी याचिका में उन्होंने किस बात पर आपत्ति व्यक्त की थी?

2005 में इस याचिका पर विचार करने के बाद सर्वोच्च न्यायालय ने क्या किया?

Rationalised 2023-24

केंद्र सरकार ने हाल ही में अनुसूचित जनजाति एवं अन्य परंपरागत वनवासी (वन अधिकार मान्यता) अधिनियम, 2006 पारित किया है। इस कानून की प्रस्तावना में कहा गया है कि यह कानून ज़मीन और संसाधनों पर वन्य समुदायों के अधिकारों को मान्यता न देने के कारण उनके साथ हुए ऐतिहासिक अन्याय को दूर करने के लिए पारित किया गया है। इस कानून में वन्य समुदायों को घर के आस-पास ज़मीन, खेती और चराई योग्य ज़मीन और गैर-लकड़ी वन उत्पादों पर उनके अधिकार को मान्यता दी गई है। इस कानून में यह भी कहा गया है कि वन एवं जैवविविधता संरक्षण भी वनवासियों के अधिकारों में आता है।

आदिवासियों की माँगें और 1989 का अधिनियम

1989 का अधिनियम एक और वज़ह से महत्त्वपूर्ण है। आदिवासी कार्यकर्ता अपनी परंपरागत ज़मीन पर अपने कब्ज़े की बहाली के लिए इस कानून का सहारा लेते हैं। जैसा कि आपने पिछले अध्याय में पढ़ा था, अपनी ज़मीन छोड़ने और ज़बरन विस्थापन से आदिवासियों को भारी परेशानी होती है। कार्यकर्ताओं का कहना है कि जिन लोगों ने आदिवासियों की ज़मीन पर ज़बरदस्ती कब्ज़ा कर लिया है, उन्हें इस कानून के तहत सज़ा दी जानी चाहिए। उन्होंने कहा कि यह कानून भी जनजातीय समुदायों को केवल वही लाभ देता है जिनका संविधान में आश्वासन दिया गया था। उनका कहना है कि संवैधानिक रूप से आदिवासियों की ज़मीन को किसी गैर-आदिवासी व्यक्ति को नहीं बेचा जा सकता। जहाँ ऐसा हुआ है वहाँ संविधान की गरिमा बनाए रखने के लिए उन्हें उनकी ज़मीन वापस मिलनी चाहिए।

आदिवासी कार्यकर्ता सी.के. जानू का आरोप है कि आदिवासियों के संवैधानिक कानूनों का उल्लंघन करने वालों में विभिन्न प्रदेशों की सरकारें भी पीछे नहीं हैं। यही सरकारें हैं जो लकड़ी व्यापारी, पेपर मिल आदि के नाम पर गैर-आदिवासी घुसपैठियों को जनजातीय ज़मीनों का दोहन करने और आदिवासियों को उनके परंपरागत जंगलों से उजाड़ने की छूट देती हैं। इसके अलावा जंगलों को आरक्षित या अभयारण्य घोषित करके भी लोगों को वहाँ से बेदखल किया जा रहा है। सुश्री जानू का यह भी कहना है कि जो आदिवासी पहले ही बेदखल हो चुके हैं और जो अब वापस नहीं लौट सकते, उन्हें भी मुआवज़ा दिया जाना चाहिए। इसका मतलब यह है कि सरकार ऐसी योजनाएँ बनाए जिनके सहारे वे नए स्थानों पर रह सकें और काम कर सकें। जब सरकार आदिवासियों से छीनी गई ज़मीन पर औद्योगिक या अन्य परियोजनाओं के निर्माण के लिए बेहिसाब पैसा खर्च कर सकती है तो इन विस्थापितों को पुनर्वास देने के लिए मामूली सा खर्चा करने में क्यों हिचकिचाती है।

निष्कर्ष

किसी अधिकार या कानून या नीति को कागज़ पर लिख देने का यह मतलब नहीं होता कि वह अधिकार या कानून या नीति वास्तव में लागू हो चुका है। इन प्रावधानों को अमली जामा पहनाने के लिए लोगों को लगातार कोशिशें करनी पड़ती हैं। बराबरी, इज़्ज़त और सम्मान की चाह कोई नयी बात नहीं है। यह बात हमारे पूरे इतिहास में विभिन्न रूपों में दिखाई देती है। इसी प्रकार, लोकतांत्रिक समाज में भी संघर्ष, लेखन, सौदेबाज़ी और सांगठनिकता की प्रक्रियाएँ जारी रहनी चाहिए।

Rationalised 2023-24

अभ्यास

1. दो ऐसे मौलिक अधिकार बताइए जिनका दलित समुदाय प्रतिष्ठापूर्ण और समतापरक व्यवहार पर ज़ोर देने के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं। इस सवाल का जवाब देने के लिए पृष्ठ 14 पर दिए गए मौलिक अधिकारों को दोबारा पढ़िए।

2. रत्नम की कहानी और 1989 के अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के प्रावधानों को दोबारा पढ़िए। अब एक कारण बताइए कि रत्नम ने इसी कानून के तहत शिकायत क्यों दर्ज कराई।

3. सी.के. जानू और अन्य आदिवासी कार्यकर्ताओं को ऐसा क्यों लगता है कि आदिवासी भी अपने परंपरागत संसाधनों के छीने जाने के खिलाफ़ 1989 के इस कानून का इस्तेमाल कर सकते हैं? इस कानून के प्रावधानों में ऐसा क्या खास है जो उनकी मान्यता को पुष्ट करता है?

4. इस इकाई में दी गई कविताएँ और गीत इस बात का उदाहरण हैं कि विभिन्न व्यक्ति और समुदाय अपनी सोच, अपने गुस्से और अपने दुखों को किस-किस तरह से अभिव्यक्त करते हैं। अपनी कक्षा में ये दो कार्य कीजिए-

   (क) एक ऐसी कविता खोजिए जिसमें किसी सामाजिक मुद्दे की चर्चा की गई है। उसे अपने सहपाठियों के सामने पेश कीजिए। दो या अधिक कविताएँ लेकर छोटे-छोटे समूहों में बँट जाइए और उन कविताओं पर चर्चा कीजिए। देखें कि कवि ने क्या कहने का प्रयास किया है।

   (ख) अपने इलाके में किसी एक हाशियाई समुदाय का पता लगाइए। मान लीजिए कि आप उस समुदाय के सदस्य हैं। अब इस समुदाय के सदस्य की हैसियत से अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए कोई कविता या गीत लिखिए या पोस्टर आदि बनाइए।

शब्द संकलन

आग्रही- जो व्यक्ति या समूह पुरज़ोर तरीके से अपनी बात रखता है उसे आग्रही कहा जाता है।

बहिष्कार- इसका मतलब किसी व्यक्ति या समूह को बाहर निकाल देने या प्रतिबंधित कर देने से होता है। इस अध्याय में यह शब्द व्यक्ति और उसके परिवार के सामाजिक बहिष्कार के विषय में आया है।

नैतिक रूप से निंदनीय- ये ऐसे कृत्य होते हैं जो सभ्यता और प्रतिष्ठा के सारे कायदे-कानूनों के खिलाफ़ होते हैं। इस शब्द का इस्तेमाल आमतौर पर ऐसे घृणित और अपमानजनक कृत्यों के लिए किया जाता है जो समाज द्वारा स्वीकृत मूल्यों के खिलाफ़ होते हैं।

नीति- एक घोषित कार्यदिशा जो भविष्य का रास्ता बताती है, लक्ष्य तय करती है या अपनाए जाने वाले सिद्धांतों व दिशानिर्देशों की व्याख्या करती है। इस अध्याय में हमने सरकारी नीतियों का उल्लेख किया है, लेकिन स्कूल, कंपनी आदि अन्य संस्थाओं की भी अपनी नीतियाँ होती हैं।

© NCERT not to be republished

Rationalised 2023-24